International Journal of Applied Research 2021; 7(2): 89-93

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(2): 89-93
www.allresearchjournal.com
Received: 16-12-2020
Accepted: 18-01-2021

युगेश त्रिपाठी
शोध छात्र हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
युगेश त्रिपाठी
शोध छात्र हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

नरेश मेहता के प्रबन्ध काव्य में समाज चेतना का अध्ययन

युगेश त्रिपाठी

सारांश
नरेश मेहता के प्रबन्ध काव्य में समाज चेतना की उपलब्धियों को मूल्यांकित कर तार्किक समर्थन के साथ उद्घाटित करना सहज कार्य नहीं है। क्योंकि समाज चेतना निरन्तर गत्यात्मक हुआ करती है। किसी अन्तिम पड़ाव तक चेतना स्थिर नहीं होती। ''किसी युग की रचनाओं में किसी को क्या मिलता है यह बहुत कुछ बदलते परिवेश के साथ रचनाकार के चिन्तनधारा पर केन्द्रित होता है। जब एक शोधार्थी की हैसियत से कोई अन्वेषी रचना और रचनाकार से तादात्म्य करता है तभी समग्र व्यवस्था की गहरी पहचान कर पाता है। समाज चेतना के हर प्रयास का केन्द्र बिन्दु मानवीय भावना ही है।

कुटशब्दः धर्मवीर भारती, प्रबन्ध काव्य, समाज चेतना

प्रस्तावना

''श्री नरेश मेहता अशालीन हैं। मैंने कई बड़े–बड़े व्यक्तियों को अशालीन होते देखा है पर नरेश जी को कभी अशालीन होते नहीं देखा। हाँ, उनकी भद्रता लोगों के लिए इतनी बोझिल हो जाती है कि इस बोझ को झटककर वे स्वयं ही धीरे–धीरे उनसे दूर छिटक जाते हैं। यह भद्रता उनका कवच भी है और उनका अस्त्र भी ऐसी बात नहीं है कि वह लोगों से घुलना–मिलना या उनसे सम्बन्ध जोड़ना नहीं चाहते हैं। जिनसे उनका एक बार नैकट्य हो जाता है – वेव लोंथ मुड़ जाती है उसके लिए एक कवच–अस्त्रवाली ''भद्रता'' से भिन्न वह एक दूसरे ही नरेश मेहता होते हैं – अत्यन्त सहज और पुरलुफ्त। इसका अर्थ तो यही हुआ कि वह बेहद ''चूजी'' व्यक्ति हैं।''[1]

''उनकी दृष्टि में किसी सर्जक का सृजनशील होना ही पर्याप्त नहीं है, उसे अपने हर आचरण एवं भंगिमा से भी सर्जक ही लगना चाहिए। कई सर्जक हैं या कि अधिकांश सर्जक, जो अपने सृजन में तो महत्वपूर्ण हैं पर आचरण के स्तर पर उनका व्यवहार घटिया हो जाता है। नरेश जी को इस ''घटियापन'' से सदा ही चिढ़ रही है। यह कतई आवश्यक नहीं है कि एक रचनाकार होने के कारण उनकी पसन्द केवल सृजनशील व्यक्ति ही हो। वह किसी सामान्य व्यक्ति के प्रति भी आत्मीय हो सकते हैं पर वह ''मनुष्य'' हों। यह तो उस व्यक्ति के लिए आवश्यक शर्त है ही। हाँ, एक बार सारे परीक्षण और परीक्षण की प्रक्रिया में खरा सिद्ध हो जाने पर वह केवल किसी को अपने निकट आने की ही नहीं बल्कि अपने जीवन और रचना के हर कोने–कुचालों में झाँकने–टटोलने की अनुमति बगैर चिन्ता के उसे सहज ही दे देते हैं।''[2]

''आधुनिकता और औद्योगीकरण एक दूसरे के पर्याय बन गये। यह वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य के पारम्परिक सोच में न केवल हस्तक्षेप कर रही थी वरन नया सोच पारम्परिक सोच को विस्थापित कर रहा था। पश्चिम में नीत्शे ईश्वर की मृत्यु की घोषणा कर ही चुका था। व्यक्ति का वर्चस्व और उसकी शक्ति में वृद्धि हो रही थी। जहाँ आधुनिकता और औद्योगीकरण में गहरा सम्बन्ध है वही आधुनिकता का एक पहलू नास्तिकता भी है। इसका परिणाम है– मूल्यहीनता। मूल्यविहीन होकर मनुष्य या तो तानाशाह बन बैठा या वह क्रीतदास बन गया। वह मनुष्य का दास भी था और मशीनों का दास भी। एक भयावह स्थिति थी जिसमें मनुष्य और समाज दोनों ही अपने–अपने स्तर पर टूट रहे थे। पारम्परिक मूल्य तो व्यर्थ हो ही गये थे पर नये मूल्य गढ़े नहीं जा सके थे। यूरोप का पूरा इतिहास मनुष्य और मनुष्यता के पराभाव की त्रासद गाथा है। यूरोप का जो अनुभव था वह हमारा अनुभव तो नहीं था पर उसे हम अपने ही अनुभव का हिस्सा मान रहे थे और वह हमारे सृजन में व्यक्त हो रहा था।''[3]

कोई भी लेखन वर्तमान का या वर्तमान के लिए ही नहीं होता है। उसमें अपने अतीत की अनुगूँजे भी होती हैं और अपने समय का होते हुए वह अपने समय का अतिक्रमण करके भविष्य के लिए भी होता है। यह इसलिए भी होता है कि लेखक अपने समय से मुक्त होना भी चाहता है। शायद यही प्रेरणा उसे लेखक होने के लिए प्रेरित करती है।

''अपने रचना के आरम्भिक दौर में नरेशजी ने सम्भवतः इसी नयपन या प्रयोग के उत्साह में अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक नयी काव्य–भाषा अविष्कृत की थी।''[4]

श्री नरेश मेहता और उसके काव्य पर हमेशा ही यथार्थ की उपेक्षा करने के आरोप निरन्तर लगाये जाते रहे हैं। नयी पीढ़ी के लेखकों के लिए सम्भवतः यह नयी और चौकाने वाली भी सूचना हो कि नरेशजी भी सन् 45 से 1955 के दशक में साम्यवादी दल के सक्रिय सदस्य थे और अपनी इसी वामपंथी सम्बद्धता और वैचारिक प्रतिबद्धता के कारणों से उन्होंने ''आकाशवाणी'' की अच्छी–खासी नौकरी को छोड़ दिया था। क्यों एक राजनीतिक दल और उसकी विचारधारा को समर्पित एक ''कार्ड होल्डर'' सदस्य उस पार्टी–तंत्र, वर्गीय विचारधारा और और उसकी शिविर बहदता को ''नमस्कार'' एक दिन बाहर आ जाता है?

इस प्रसंग पर चर्चा करते हुए नरेशजी ने बतलाया था – ''जिस तरह गन्ने का रस चूसने के बाद उसे फेंक दिया जाता है, उसी तरह मैंने भी उसमें भरपूर रस ग्रहण किया और जब उसमें रस ही नहीं बचा तो उसे थामें रहना या उसमें बने रहने का कोई अर्थ न हीं था।''[5]

''साहित्य के क्षेत्र में नयी कविता की ''पताका'' फहरा रही थी। भारतीय साम्यवादी दल और प्रगतिशील लेखक संघ से किनारा करके नरेशजी ने कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की। प्रगतिशील लेखक संघ को छोड़कर क्या वे नयी कविता के आन्दोलन में सक्रिय हुए?''[6]

महाप्रस्थान प्रबन्ध काव्य में समाज चेतना

हिन्दी काव्य प्रबन्ध काव्य के इतिहास में यदि हम विचार करें तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की रचनाओं में सामाजिक दृष्टि का महत्व विविध रूपों में बढ़ा है और उनमें सामाजिक महत्व के बढ़ने के कारण सर्जक की सामजिक चेतना का महत्व और उनके विचार चिन्तन का महत्व भी बढ़ गया है। अशोक बाजपेयी के शब्दों में – नयी कविता की समीक्षा–दृष्टि सामने आयी जिसमें सामाजिक यथार्थ के चित्रण विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इसी कारण से कवि की सामाजिक अवबोध को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इस संदर्भ में व्यक्ति और समाज यथार्थ बोध, समसामयिकता, कविता और राजनीति, मूल्य बोध, अनुभूति की प्रामाणिकता आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा की गई है। व्यक्ति और समाज के सन्दर्भ में व्यक्तिवादिता के स्थान पर व्यक्ति की सामाजिकता का महत्व प्रतिपादित हुआ है।[7]

कविता की सामाजिक प्रासंगिकता के लिए समकालीन यथार्थ बोध की आवश्यकता पर बल दिया गया है। जिस कवि की कविता में समकालीन संकट का बोध "जितना ही गहरा और व्यापक होता है वह अपने युग का उतना ही समर्थ प्रतिनिधि होता है।"[8] कविता के द्वारा नागरिक अपनी स्थिति की पहचान और अपने संघर्ष को समझ सकता है और कविता ही उसकी जिजीविषा को उत्तेजित करती हुई उसकी बुनियादी संघर्षशीलता को बढ़ा सकती है। कविता ही 'सामाजिक रूप से उपयोगी' हो सकती है और 'सामाजिक संघर्ष में उसकी सार्थक हिस्सेदारी' संभव है।[9] इस संदर्भ में मूल्यों का प्रश्न भी उठता है कि कौन से मूल्य कितने महत्वपूर्ण है इसका विवेक अत्यन्त आवश्यक है। अनुभूति की प्रामाणिकता एवं कवि की ईमानदारी ऊपरी तौर पर व्यक्तिगत ही प्रतीत होता है किन्तु इस पर यह जब प्रश्न उठाया गया कि अनुभूति की प्रामाणिकता और कवि की ईमानदारी के नाम पर व्यक्तिगत मानोभावों के यथातथ्य चित्रण पर बल देना ही पर्याप्त है अथवा उसका वस्तुगत ज्ञानात्मक आधार भी आवश्यक है। अनुभूति की प्रामाणिकता की माप और कसौटी क्या है[10] इत्यादि। ये सभी प्रश्न एवं मुद्दे मुख्यतः कवि समाज चेतना से संपृक्त हैं। यही कारण है कि नये कवि केवल कविता की रचना ही नहीं करते हैं अपितु पर्याप्त मात्रा में उनमें सामाजिक बोध भी दिखलाई पड़ते हैं। 'सप्तक' के कवियों में भी पर्याप्त मात्रा में सामाजिक बोध मिलता है उनकी समाज चेतना को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए उनके समाज–बोध का अध्ययन अतीव आवश्यक है।

अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर निर्भर हैं किन्तु उन्होंने व्यक्ति की सत्ता पहले स्वीकार किया है और उसके पश्चात् समाज की। उनकी विचारधारा के अनुसार 'मानव समाज का आधार व्यक्ति इकाई' है।[11] उन्होंने 'सबसे पहले एक अविभाज्य व्यक्ति के रूप में, अपने अनुभव के रूप में'[12] जीवन की पहचान की है। उनके मतानुसार इतना ही नहीं कि व्यक्ति की सत्ता पहले है बल्कि वह मूल सत्ता है। 'कर्ता होने के नाते' मानव समाज का निर्माता वही है।[13] "अभिमूल्यों का स्रष्टा भी व्यक्ति ही हो सकता है, होता है, होगा। समाज मानव द्वारा निर्मित मूल्यों की स्वीकृति दे सकता है किन्तु उनकी सृष्टि नहीं कर सकता।"[14] समाज किधर जा रहा है यह सवाल भी व्यक्ति से ही पूछा जा सकता है, समाज से नहीं क्योंकि उनकी दृष्टि में "समाज सोच नहीं सकता, सोचने का काम व्यक्ति करता है।"[15] अज्ञेय ने स्पष्ट तौर पर यह नहीं स्वीकार किया है कि समाज या व्यक्ति में से एक अधिक महत्वपूर्ण है। वे दोनों को महत्वपूर्ण मानते हैं किन्तु 'व्यक्ति' की सत्ता प्रथमतः स्वीकार करने उसे मूलसत्ता मानने के कारण उन्होंने व्यक्ति पर विशेष बल दिया है।

व्यक्ति और समाज में से मूल सत्ता किसकी है कौन पहले है, कौन बाद में – इस पर किसी अन्य कवि ने विचार नहीं व्यक्त किया है किन्तु मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे एवं नेमिचंद्र जैन व्यक्ति और समाज के संबंध में अलग–अलग ढंग से विचार करते हैं। मुक्तिबोध की मान्यता है कि – 'आत्मा का सार तत्व प्राकृत रूप से सामाजिक है' इसलिए व्यक्ति और समाज में कोई विरोध नहीं। 'जहां व्यक्ति समाज का विरोध करता दिखाई देता है वहां वस्तुतः समाज के भीतर की ही एक सामाजिक प्रवृत्ति दूसरी सामाजिक प्रवृत्ति से टकराती है, वह समाज का अन्तर्विरोध है न कि व्यक्ति विरुद्ध समाज का या समाज के विरुद्ध व्यक्ति का। व्यक्ति विरुद्ध समाज होता ही नहीं, वह एक 'खाम खयाली' है।"[16] मुक्तिबोध के विचारों से स्पष्ट है कि 'व्यक्ति की आत्मा कोई ऐसी सत्ता नहीं जिसका आधार व्यक्ति के नितांत निजी तत्व हों। व्यक्ति की आत्मा द्वारा समाज अपने को अभिव्यक्त करता है तथा व्यक्ति और समाज की समस्यायें अलग–अलग नहीं हैं दोनों एक दूसरे से अभिन्न है। व्यक्ति विरुद्ध समाज और समाज विरुद्ध व्यक्ति का विचार उन्हें सही नहीं प्रतीत होता है उनकी दृष्टि में सामाजिक अन्तर्विरोध ही मुख्य बात है।

रामविलास शर्मा के विचार में व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं। उनके विचार में – "व्यक्ति के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती, समाज के बिना व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी के रूप में असंभव है।"[17] समाज निरपेक्ष व्यक्ति की सत्ता में उनका विश्वास नहीं है। उनकी मान्यता है कि – "व्यक्ति समाज का अंग है।" अतः समाज निरपेक्ष व्यक्ति की सत्ता नहीं होती।[18] भाववादी समीक्षकों की व्यक्ति संबंधी अवधारणा से रामविलास शर्मा सहमत नहीं हैं क्योंकि उनके विचार में वह असामाजिक प्राणी ठहरता है। व्यक्ति के संदर्भ में कई हिन्दी के कवियों की विचारधारा भाववादियों से प्रभावित है, रामविलास शर्मा ने स्वीकार की है। अतः रामविलास शर्मा व्यक्ति की सत्ता को समाज सापेक्ष मानकर समाज के महत्व पर बल देते हैं।

प्रभाकर माचवे के विचार में – "समाज और व्यक्ति समुद्र और लहरों की नाई एक दूसरे से घुले मिले हैं।" इसलिए "सामाजिक वृत्तियों से वैयक्तिक प्रवृत्तियां भिन्न नहीं की जा सकतीं। सामाजिक तथा वैयक्तिक जीव विकास – आर्गेनिज्म्स के प्राण एक ही हैं, रूप मात्र भिन्न हैं।" समुद्र और लहर की उपमा से

जिस संबंध की ओर संकेत है वह 'कहियत भिन्न न भिन्न' का भावबोध कराता है।

नेमिचंद्र जैन के अनुसार व्यक्ति का समाज से तो संबंध अवश्य है किन्तु वह 'यांत्रिक' संबंध नहीं है। उनके विचार में दोनों की पारस्परिक संबंध इस बात में हैं कि "बाह्य जगत अथवा समाज को जानने समझने की चेष्टा में व्यक्ति उसे बदलता भी है। साथ ही बाह्य जगत के ज्ञान द्वारा और उसे बदलने की प्रक्रिया में व्यक्ति स्वयं भी बदलता जाता है। जैसे–जैसे बाह्य जगत को जानने और बदलने की क्षमता उसमें बढ़ती जाती है 'वह और भी अधिक तीव्र गति से' बाह्य जगत पर आघात करने लगता है इससे उसका व्यक्तित्व अधिक व्यापक बनता है और वह अपने को विकसित करने में समर्थ हो जाता है।"[19] व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों को नेमिचंद्र जैन ने जिस रूप में देखा उससे दोनों की वर्तमान स्थिति तथा एक दूसरे को बदलने की क्षमता का पता चलता है। दोनों के बीच आज बहुत बड़ी खाई बन रही है। आज के जीवन की जटिलता ही व्यक्ति और समाज की इस विषम स्थिति का कारण है।

भारतभूषण अग्रवाल की दृष्टि में 'कला में व्यक्ति और समाज का समान महत्व है व्यक्ति का महत्व तो इसलिए है कि कला व्यक्ति के प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होती।' कविताओं में भी कवि के सुख–दुःख, घुटन, चीत्कार, दर्द, अपमान आदि का चित्रण होता है किन्तु कवि के सुख दुख आदि को बिल्कुल व्यक्तिगत मान लेना सही नहीं क्योंकि एक ओर इन सबका संबंध कवि के 'व्यक्ति' से है तो दूसरी ओर उनका संबंध दूसरों से भी है यदि उसका सुख दुख नितांत उसका अपना होता तो वह उसका चित्रण करने का साहस नहीं कर सकता।'[20] उनकी मान्यता है कि 'व्यक्ति' को कवि द्वारा कला में महत्व न दिया जाना, अन्याय है, इसी तरह कवि का 'समाज' से भागने की चेष्टा भी गलत है। वस्तुतः कवि का उद्देश्य अपनी कविता द्वारा "व्यक्ति की इकाई समाज की व्यवस्था के बीच संबंध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है।" इससे स्पष्ट होता है कि भारतभूषण अग्रवाल व्यक्ति और समाज दोनों को कला और कलाकार के प्रति अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। वे दोनों ही पक्षों पर समान रूप से बल देते हैं।

गिरिजा कुमार माथुर ने नयी कविता के संदर्भ में व्यक्ति और समाज की चर्चा करते हुए विचार व्यक्त किया है कि – "नयी कविता का विकसित स्वर व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है।" सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति जो उन्हें "सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है वह है व्यक्ति को परिभाषित करने का प्रयत्न।"[21] आधुनिक काल के कृतिकार अपने–अपने ढंग से व्यक्ति की खोज व उसे परिभाषित करने की चेष्टा करते आ रहे हैं। वह सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरुक तथा वस्तुपरक दृष्टि कायम रखते हुए 'व्यक्ति इकाई को' प्राथमिकता देता है। वह 'निराकार–समूह सृष्टि' का पक्ष ग्रहण नहीं करता। इसका यह अर्थ नहीं कि नया कवि "आत्मलीन एकातिक व्यक्तिवादिता को प्रश्रय देता है इकाई को प्राथमिकता देते हुए भी वह उसे सामाजिक संदर्भ से अलग" नहीं देखता।[22]

नरेश मेहता के छात्र जीवन का उत्तरार्द्ध अत्यन्त ही संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। अभाव और यातना का इतना मर्मान्तक दौर किसी भी व्यक्ति को भौतिकता के प्रति आग्रही बना देगा। साथ ही उसमें एक गहरा प्रतिशोध का भाव भी भरेगा। नरेश जी इन दोनों परिणतियों से बच निकलते हैं। बच नहीं निकलते वरन् पूरी वेगवत्ता के साथ वे इनसे ऊपर उठते जाते हैं। फिर भी सामान्य मनुष्य की सामान्य जरूरतें नरेश जी की भी जरूरतें हैं। उन्हें भी पेट खाली रहने पर पीढ़ा हुई होगी। उन्हें भी अपने भव्य कायिक च्यक्तित्व को अच्छे परिधान से संवलित करने की कांक्षा ने ललचाया होगा। वे भी अच्छे से निवास में रहने की कामना करते रहे होंगे। मनुष्य होने का सामान्य अर्थ उनके लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण रहा होगा। तभी तो उनका झुकाव प्रारम्भ में उन लोगों की ओर हुआ जो शोषण और असमानता के विरुद्ध अपने को प्रतिबद्ध मानते हैं।

रोटी और कविता शीर्षक तथ्य के माध्यम से रामकमल राय का अभिमत इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है। 'रोटी के लिए संघर्ष उन्होंने लगातार किया है, एक अर्थ में आज भी कर रहे हैं, परन्तु रोटी पर कविता उन्होंने नहीं लिखी। जब आज के कवि बड़े ही आक्रोश में आकर सामाजिक असमानता और शोषण को विषय बना कर अपनी सर्जन–शीलता की धार तेज करते हैं, तो उन्हें लगता है कि नरेश मेहता एक यथार्थवादी, स्वप्नदर्शी कवि हैं। उन्हें ही नहीं अन्य संवेदनशील कवि भी उन्हें स्वीकार पाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। उन्हें लगता है कि नरेश मेहता एक ऐसे भावलोक में विचरण करते हैं जो सांसारिक अनुभूतियों से परे हैं। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना समीचीन होगा कि कवि की संवेदना की परिधि का प्रसार कितना वृहद हो सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं।''

नरेश जी के समक्ष प्रकृति और प्राणि जगत का यह भयावह रूप प्रस्तुत करने वाला जीवन–दर्शन और उसकी परिणतियाँ रही हैं। उनकी दृष्टि प्रकृति के उस उदात्त रूप पर गड़ी हुई हैं जहाँ कोई प्रतिस्पर्धी नहीं, केवल दान ही दान है, केवल सौन्दर्य ही सौन्दर्य है, केवल कल्याण ही कल्याण है।

महाप्रस्थान प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत प्रस्थान पूर्ण विचार बिन्दु के माध्यम से कवि का भाव इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है। ''प्रत्येक मनुष्य के भीतर आरात्रिक रामायण सम्पन्न होती है तो आक्षण अपने परिवेश में वह महाभारत का साक्षात करता है। अपनी प्रकृति, संस्कार, गुण, धर्म तथा स्वत्व के अनुरूप ही इन कथा–गाथाओं में हम अपना पक्ष निर्धारित करते हैं। यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है कि वे या इन जैसे अन्य आर्ष–ग्रन्थ, भारतीय जीवन की ऐतिहासिकताएँ हैं या नहीं, वास्तविकताएँ हैं; नियति भी कहा जा सकता है। इतिहास सिवाय काल सम्बन्धी आश्वस्ति से अधिक और क्या है? विचार कालातीत तो होते ही हैं परन्तु मानवीय आश्वस्ति भी होते हैं, अतः इतिहास से कहीं अधिक सार्थक, उपादेय एवं महत्वपूर्ण भी।''[23]

वे आगे लिखते हैं – ''किसी भी देश–काल में मनुष्य कैसा ही वैयक्तिक अथवा सामाजिक आचरण करे, महाभारत में उसकी प्रतिकृति अवश्य मिल जाएगी। मनुष्य–व्यवहार का यह प्रथम एवं अन्तिम कोष है। मनुष्य से अधिक उन्नत एवं संस्पर्शी रचनात्मक बाद्यता सृष्टि में अन्यत्र नहीं प्रस्तुत कर सकती। जैवीयता की पराकाष्ठा है मनुष्य और इसीलिए यह श्रेष्ठ है। यह संस्पर्शी श्रेष्ठता उसके गुणसम्पन्नों की है। जिस दिन मनुष्य गुणसम्पन्न युक्त अपने भागवत–स्वरूप को पहचान लेता है तो वह पूर्ण–पुरुष होने के लिए बाध्य है, परन्तु यह भी उतना ही कटु सत्य है कि मनुष्य से अधिक जड़ भी जड़ नहीं होता। जड़ता और ऊर्ध्वता, दोनों ध्रुवों पर मनुष्य ही है।''[24]

महाप्रस्थान प्रबन्ध काव्य में महाभारत के कथा प्रसंगों का पौराणिक चित्रण हुआ है। प्रस्तुत काव्य में राज्य, राज्यव्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन के अमानवीय प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया गया है। इस प्रबन्ध के अन्तर्गत कुल तीन पर्व वर्गीकृत हैं प्रथम वर्ग में यात्रा पर्व, द्वितीय वर्ग में स्वाहा पर्व और तृतीय वर्ग में स्वर्ग पर्व का विवेचन हुआ है। हम इन्हीं पर्वों के आधार पर यह देखने का प्रयास करेंगे कि यहां प्रस्थान प्रबन्ध काव्य में समाज चेतना का स्वरूप किस प्रकार रहा है।

कवि ने समग्र रूप से महाप्रस्थान प्रबन्ध काव्य में यह स्पष्ट किया है कि महाभारत में राज्य व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन अमानवीय रहे हैं। महाप्रस्थान की प्रासंगिकता को कवि ने नये सामाजिक मूल्यों से जोड़ने का सफल प्रयास किया है। अन्ततः मैं यह निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि महाप्रस्थान प्रबन्ध काव्य कवि का दृष्टि बोध व्यक्ति और व्यक्ति के धरातल पर लोक परक, समाज परक और प्रकृति परक रहा है। प्रस्तुत प्रबन्ध में समाज बोध की सम्वेदना में अदम्य उत्साह निहित है। इस दृष्टि से देखने पर

मुझे लगता है कि आधुनिक प्रबन्ध काव्यों के सर्जकों ने यह स्पष्ट किया है कि अब समाज बोध का समय आ गया है कि हृदय मंथन करें, सोचें और सामाजिक साध्य को उद्घाटित करें। कवि नरेश मेहता के महाप्रस्थान प्रबन्ध काव्य में व्यक्ति और व्यक्तित्व समाज बोध की दृष्टि से अनुकरणीय रहा है।

संशय की एक रात प्रबन्ध काव्य में समाज चेतना

साहित्य में समाज की छाया पड़ती है किन्तु कुछ लोगों की मान्यता है कि 'यह छाया अपने आप पड़ती है।' डॉ. नामवर सिंह के अनुसार – "समाज और साहित्य के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है लेखक का व्यक्तित्व। साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रकट होती है वह लेखक के व्यक्तित्व के ही माध्यम से आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की कड़ी – लेखक के व्यक्तित्व का बहुत महत्व है और यह महत्व इस बात का है कि एक ओर इसका सम्बन्ध समाज से है तो दूसरी ओर साहित्य से, साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक–दूसरे को इस प्रकार प्रभावित करते हैं कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है – समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[25]

सप्तक के कवियों की रचनाओं में समाज एवं सौन्दर्य चेतना की उपलब्धियों को मूल्यांकित कर सबल और तार्किक समर्थन के साथ उद्घाटित करना अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि कोई भी मूल्यांकन अंतिम पड़ाव तक स्थिर नहीं होता। किसी युग की रचनाओं में किसी को क्या मिलता है। यह बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि अनुसंधाता किसी युग विशेष की रचना के पास किस उद्देश्य से जाता है। जब कविता के पास एक शोधार्थी की हैसियत से जाता है तब उसके साथ मूल्यांकन दृष्टि भी साथ–साथ जाती है। कविता की अपनी विलक्षणता होती है फिर भी उसका मूल्यांकन करते समय हम उसका संबंध आदि के अपने जीवन परिवेश से जोड़ते हैं।

कविता की दुनिया की सार्थकता इसी में है कि वह पाठक को इस दुनिया की ओर उन्मुख करती चले। समाज एवं सौन्दर्य चेतन कवि कई पड़ावों पर सजग होता है। वह समग्र व्यवस्था की गहरी पहचान रखता है। यथार्थ जीवन मूल्य एवं सौन्दर्य परिणतियों का साक्षात्कार करता है। इसके लिए कवि को आत्म संघर्ष करना पड़ता है। समाज, चेतन कवि के हर प्रयास का केन्द्र बिन्दु मानवीय सौन्दर्य की भावना ही है।

सप्तक के कवियों की रचनाओं में सौन्दर्य चेतना को विविध संदर्भों में देखने के उपरांत यह कहना समीचीन लगता है कि इन कवियों में सौन्दर्य की संपृक्ति सर्वाधिक गहरी है। कवि की सामाजिक चेतना पर यथार्थ दृष्टि एवं रोमानी भाव सौन्दर्य का गहरा प्रभाव पड़ता है। कवि अपने वैयक्तिक साधना के मार्ग से सौन्दर्य चेतना को बदलना चाहता है। 'तारसप्तक' काल में ही उनकी कविता में सामाजिक चेतना का प्रवेश हो गया था। बाद में द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ सप्तक में सप्तकीय कवियों की सामाजिक चेतना में सौन्दर्य चेतना के नयी सजगता के दर्शन होने लगते हैं।

सप्तक के प्रायः सभी, विलक्षण कवि हैं। प्रयोगशील कविता के सम्बन्ध में ये सप्तकों की भूमिकाओं में काव्य संबंधी नितांत नवीन आदर्शों को लेकर सम्मुख आये। सौन्दर्य चेतना की दृष्टि से देखा जाय तो इस युग के कवियों का काव्य भावानुभूति और बौद्धिकता से ग्रस्त है। 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी' की कविताओं में अज्ञेय की सौन्दर्य भावनाशीलता की अभिव्यक्ति बड़े ही सहज धरातल पर हुई है। 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे', 'आंगन के पारद्वार', 'करुणा प्रभामय', रचनाओं में अज्ञेय मूलतः समाज के यथार्थ परिवेश को प्रकट करते हैं। 'सागर मुद्रा', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', उनके काव्य में क्षणवाद, भाववाद, भोगवाद, दुःखवाद और उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ सम्यक रूप से समाज और उनकी सौन्दर्य चेतना को उद्घाटित करती है।

संशय की एक रात प्रबन्ध काव्य के सन्दर्भ में लक्ष्मीकान्त वर्मा की मान्यता है कि "कवि द्रष्टा भी होता है और विचारक भी। विचारक के रूप में वह विवेक के नये विकल्प ढूँढ़ता है। द्रष्टा रूप में वह विद्रोही होता है तथा प्रत्येक उस अपर्याप्त मूल्य का खण्डन करता है जो अनायास ही उसके ऊपर शंखवलय सा जकड़ा रहता है। कवि इसीलिए जहाँ मनीषी होता है वहीं मूल्यान्वेषी भी होता है। जहाँ वह कल्पना के स्तर पर बिम्बों की रचना करता है। वहीं वह विचारक के रूप में विकल्प एवं संकल्प का अधिष्ठाता भी होता है।"[26]

संशय की एक रात में जो मूल समस्याएँ उठाई गयी हैं उन समस्याओं में व्यक्ति का नितान्त व्यक्तित्व सार्वजनिक हुआ है। व्यक्ति मर्यादा और सार्वजनिक आचरण की समस्या राम को संशय में डालती है, यह एक नितान्त आधुनिक सामाजिक समस्या है। युद्ध और शान्ति प्रस्तुत प्रबन्ध की दूसरी समस्या बनकर उपस्थित है। इस परिवेश में यह देखा गया है कि राम के सामने युद्ध और शान्ति में विकल्प करने की समस्या प्रत्यक्ष हुई है। इस प्रबन्ध में राम न ऐतिहासिक नियत वाले राम हैं, न इतिहास के निर्माता हैं, बल्कि वे इतिहास मुक्त भावना से अनुप्रमाणित राम हैं।

निष्कर्ष

आज के युगीन सन्दर्भ में राम का यह संशय कितना प्रासंगिक है। इसे कोई भी विवेकशील मानव सहज ही समझ सकता है। उक्त विवेचनोपरान्त मैं यह कह सकता हूँ कि हिंसा और प्रतिशोध से मानवीयता और आत्मीय संतुष्टि की प्राप्ति सम्भव नहीं है। संशय और प्रबंचना की ऐसी श्रृंखला शुरू है जिसका कोई अन्त नहीं है। नरेश मेहता के संशय की एक रात रचना में राम के मन में वह संशय उदित होता है। राम को युद्ध में तो जाना ही था। रावण और अन्य राक्षसों का वध तो होना ही था परन्तु राम के मन में उठा यह संशय आज की मनुष्यता के तथा समाज चेतना के मन का संशय है। जब भी इस धरा धाम पर, न्याय के नाम पर युद्ध हुए हैं तब–तब मानवीय भाव तथा सामाजिक चेतना के भाव बार–बार उदित हुए हैं। नरेश मेहता के राम को अपने सेवकों, परिषदों के निर्णय के सामने झुकना पड़ा था। उन्हें युद्ध में तत्पर होना ही पड़ा। युद्ध को स्वीकार करते हुए भी राम अपने संशय को, अपनी चिन्ता को पूरी मानवता के लिए, समाज परिवार, राष्ट्र एवं विश्व के लिए जीवन्त रूप में छोड़ जाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नरेश मेहता : एक एकान्त शिखर, प्रमोद त्रिवेदी, पृष्ठ 5, प्रथम संस्करण 1993.
2. वही, पृष्ठ 1.
3. वही, पृष्ठ 17.
4. नरेश मेहता : एक एकान्त शिखर, प्रमोद त्रिवेदी, पृष्ठ 22, प्रथम संस्करण 1993.
5. वही, पृष्ठ 25.
6. वही, पृष्ठ 25–26.
7. फिलहाल, पृष्ठ 108, अशोक बाजपेयी.
8. जिरह, पृष्ठ 49, श्रीकांत वर्मा.
9. तीसरा साक्ष्य, पृष्ठ 95, अशोक बाजपेयी.
10. कला का जोखिम, पृष्ठ 83, निर्मल वर्मा.
11. स्रोत और सेतु, पृष्ठ 112, अज्ञेय
12. भवन्ती, पृष्ठ 70, अज्ञेय.
13. अंतरा, पृष्ठ 28, अज्ञेय.
14. वही, पृष्ठ 28.
15. वही, पृष्ठ 112–113.

16. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, पृष्ठ 58, मुक्तिबोध.
17. आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ 24, रामविलास शर्मा.
18. वही, पृष्ठ 33.
19. बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 51, नेमिचंद्र जैन.
20. प्रसंगवश, पृष्ठ 28, भारतभूषण अग्रवाल.
21. नयी कविता : सीमाएं और संभावनाएं, पृष्ठ 131, गिरिजा कुमार माथुर.
22. वही, पृष्ठ 133.
23. महाप्रस्थान–प्रस्थान पूर्व, पृष्ठ–9, नरेश मेहता.
24. वही, पृष्ठ 10.
25. इतिहास और आलोचना, पृष्ठ 38.
26. संशय की एक रात, पृष्ठ 4, कथन–लक्ष्मीकान्त वर्मा.